इकाई 2 मिथक, *दान-स्तुति, गाथा, आख्यान* और महाकाव्य तथा *इतिहास-पुराण* परम्परा की ओर संक्रमण*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 *इतिहास-पुराण* परम्परा

2.3 अंतर्बद्ध इतिहासः *दान-स्तुति* ऋचाएँ, *नरशंसी* और *आख्यान*

2.3.1 *दान-स्तुति* ऋचाएँ

2.3.2 *गाथा* और *नरशंसी*

2.3.3 *रैभी*

2.3.4 *आख्यान*

2.4 महाकाव्य

2.4.1 *महाभारत*

2.4.2 *रामायण*

2.5 *पुराण*

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.10 शैक्षणिक वीडियो

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- अंतर्बद्ध ऐतिहासिक परम्परा को समझ पाएँगे,
- अंतर्निहित इतिहासों के रूपों, विशेषकर *दान-स्तुति, गाथा, आख्यान,* आदि, को पहचान सकेंगे,
- *महाभारत* व *रामायण* के संदर्भ में महाकाव्य परम्परा के महत्व को रेखांकित कर पाएँगे, और
- *पुराणों* के रूप में अतंतः *इतिहास-पुराण* परम्परा की ओर संक्रमण को परिभाषित कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सामान्यतः जिसे स्थापित इतिहास की विधा के रूप में परिभाषित किया जाता है वह भले ही भारत में मौजूद न रही हो किंतु यहाँ ऐसे कई ग्रंथ मौजूद रहे हैं जिनमें इतिहास की चेतना प्रतिबिंबित होती है। इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीनतम साहित्य में से कुछ पर विचार करेंगे और यह जानेंगे कि कैसे यह न केवल अतीत की पुनर्रचना हेतु उपयोग में लाया जा सकता है बल्कि भारतीय सभ्यता में निहित एक तरह के अतीत के बोध को भी प्रकट करता है। भारत का सबसे प्राचीन साहित्य है – *ऋग, साम, यजुर* और *अथर्ववेद*। इसके अतिरिक्त *सूत्र* साहित्य तथा *पुराण* भी प्राचीन

* डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारतीयों में निहित अतीत की चेतना का पता लगाने के प्रयास में प्रासंगिक सिद्ध हुए हैं। जिस तरह अतीत को दर्ज किया गया है या इस तरह के ऐतिहासिक लेखन की उपस्थिति प्रारम्भिक भारतीय समाज की प्रकृति हेतु अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। लेकिन ऐतिहासिक चेतना क्या है? कोई समाज जो इतिहास का बोध प्रकट करता है, अतीत तथा वर्तमान दोनों की चेतना प्रदर्शित करता है, वह ऐतिहासिक चेतना धारण करने का संकेत करता है। ऐसे समाज अतीत का लेखा-जोखा रखते हैं। हो सकता है कुछ समाजों ने कभी भी अतीत की घटनाओं को दर्ज न किया हो या ऐतिहासिक परम्परा को धारण न किया हो। तथापि इस तरह के इतिहास.विहीन समाज पूरी तरह से इतिहास की चेतना से विहीन नहीं होते हैं। इसका सरल सा अर्थ होता है कि इस तरह के समाजों ने ऐतिहासिक चेतना का इस तरह की अवधारणाओं के रूप में विकास किया जो साक्षर समाजों से भिन्न थीं। विभिन्न समाज अतीत को भिन्न-भिन्न तरीकों से निरूपित करते हैं। प्राचीन भारत इसी तरह का एक उदाहरण है।

अतः हम प्रारम्भ से ऐतिहासिक चेतना की मौजूदगी को चिह्नित करने से शुरू करते हैं जब प्राचीन ग्रंथों को प्रथम बार रचा गया था।

2.2 *इतिहास-पुराण* परम्परा

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका *इतिहास-पुराण* परम्परा से संबंधित होना है। यह पारिभाषिक शब्द अतीत से सम्बंधित परम्पराओं से जुड़ा है। इतिहास का शाब्दिक अर्थ है 'वास्तव में ऐसा था'। *पुराण* का अर्थ होता है जो प्राचीन है और जिसमें ऐसी घटनाएँ और कथाएँ शामिल हैं जिन्हें प्राचीन काल में घटित माना जाता है। *अथर्ववेद* तथा *शतपथ ब्राह्मण* में इतिहास तथा *पुराण* का उल्लेख आता है। इस सह-प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द का अर्थ उससे है जिसे अतीत में घटित माना जाता है तथा जिसका उल्लेख ***ब्राह्मणों*** और ***उपनिषदों*** में है। पहली सहस्राब्दी सी ई तक इस शब्द का प्रयोग किसी देवता पर विशेष केंद्रित मिथकों और अनुष्ठानों को समाहित करने वाले पंथीय ग्रंथों (*पुराणों*) के लिए किया जाने लगा। ज्ञान के इस स्वरूप को पाँचवे ***वेद*** की प्रतिष्ठा प्रदान की गई, संभवतः इसे दैवीय स्वीकृति प्रदान करने के लिए। यद्यपि इसके दैवीय रचना होने का दावा करने के प्रयास नहीं हुए।

प्राचीन ग्रंथों में ऐतिहासिक चेतना को दो बिंदु कोटिबद्ध करते हैं:

1) यह अंतर्बद्ध स्वरूप में था। चूँकि यह ग्रंथ के व्यापक ढाँचे में अंतर्बद्ध था अतः इसका आवरण हटाने की आवश्यकता थी। उदाहरणों में शामिल हैं उत्पत्ति के मिथक, *दान-स्तुति* ॠचाएँ, प्राचीन वंशक्रमों की वंशावलियाँ।

2) इनका मुख्यतः आनुष्ठानिक ग्रंथों में बार-बार उल्लेख है। आनुष्ठानिक ग्रंथों में इन्हें अंतर्बद्ध करने का उद्देश्य इनको स्वीकृति प्रदान करना और इनकी निरंतरता को सुनिश्चित करना था।

जब इन अंतर्बद्ध स्वरूपों में सामाजिक पूर्वधारणाएँ तथा वर्तमान के लिए आदर्श आचार समाविष्ट होते हैं इन्हें अतीत की स्मृति के रूप में समझा जा सकता है। कालांतर में अंतर्बद्ध स्वरूप आनुष्ठानिक संदर्भों से मुक्त हो गए। अधिक मूर्त इतिहास का रूप लेते हुए इन्होंने *चरितों, प्रशस्तियों, वंशावलियों* और अभिलेखों का स्वरूप ग्रहण किया। यह स्पष्ट रूप से मान्यताओं वाले इतिहास से अधिक सुपरिभाषित इतिहास की ओर परिवर्तन था।

2.3 अंतर्बद्ध इतिहासः *दान-स्तुति ॠचाएँ, नरशंसी* और *आख्यान*

इतिहास के अंतर्बद्ध स्वरूपों को समझने के लिए हमें *वेदों* से शुरू करना होगा। इसी समय *इतिहास-पुराण* परम्परा का आरंभ हुआ। वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानों का वर्णन, व्याख्या तथा भाष्य करने वाले मंत्रों और रचनाओं का संकलन हैं तथा इनका उद्देश्य व्यापक सामाजिक सरोकारों को प्रतिबिंबित करना नहीं है। *वेद* चार हैं: *ॠग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद* तथा *अथर्ववेद*। इनमें *ॠग्वेद सर्वाधिक* प्राचीन है। जिस काल में *ॠग्वेद* की रचना हुई वह काल लगभग 1500 से 1000 सी ई माना जाता है। इसमें 10 *मंडल* या पुस्तकें हैं। इसके कुछ भाग पुराने हैं तो कुछ अपेक्षाकृत नए हैं। उदाहरणार्थ, पहला,

आठवाँ, नौवाँ और दसवाँ *मंडल* दूसरे से सातवें *मंडलों* से बाद के हैं। *साम, यजुर* तथा *अथर्ववेद* के साथ *ब्राह्मण*, **आरण्यक** तथा *उपनिषद्* (लगभग 1000-500 बी सी ई) उत्तर-वैदिक साहित्य में शामिल हैं।

वैदिक साहित्य वंश-आधारित समाज को प्रदर्शित करता है जो स्वयं को *ऋग्वेद*-कालीन अपेक्षाकृत समतापूर्ण व्यवस्था से उत्तर-वैदिक काल के पदसोपानबद्ध ढाँचे की ओर संक्रमित कर रहा था। ऋग्वैदिक समाज अपनी प्रकृति में पशुचारक और कृषि-चरवाहा किस्म का था जो उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर में बसा हुआ था। यह सिंधु तथा सरस्वती के बीच का क्षेत्र था। क्रमिक रूप से इनका पूर्व की ओर विस्थापन हुआ और वैदिक जन गंगा-यमुना के **दोआब** में बस गए। यह समाज अधिकाधिक कृषि को अपनाता गया और पशुचारण पीछे छूटता गया। ऋग्वैदिक मुखिया अब तक जो अपने कबीले का संरक्षक-मात्र था उत्तर-वैदिक काल में राजा के रूप में उदित हुआ। वह ऐसा व्यक्ति था जिसे यज्ञ अनुष्ठानों की एक श्रृंखला, जैसे *अभिषेक, राजसूय, अश्वमेध, वाजपेय,* इत्यादि, के माध्यम से विशिष्ट दर्जा प्रदान किया जाता था। धीरे-धीरे *ब्राह्मणों* द्वारा राजा को भगवान प्रजापति से जोड़ा जाने लगा और वे उसे एक दैवीय प्रतिष्ठा प्रदान करने लगे। बदले में *ब्राह्मण*, जो अनुष्ठानों के ज्ञाता थे, क्षत्रियों (योद्धा मुखियाओं) से दान पाते थे। इस प्रकार दल के राजा के रूप में क्षत्रिय की प्रतिष्ठा को वैधता मिलती थी और उसे स्वर्ग में स्थान पाने की संभावना का विश्वास दिलाया जाता था तथा सत्ता, शक्ति, क्षेत्र और श्रम के ऊपर नियंत्रण का आशीर्वाद दिया जाता था।

परस्परता का यह बंधन *यजमान* (यज्ञ का आयोजक) और यज्ञ के अनुष्ठान को संपन्न कराने वाले पुरोहित को घनिष्ठ बनाता था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, राजा प्रतिष्ठा, वैधता, सत्ता और शक्ति पाता था तथा पुरोहित *दान* (उपहार) और *दक्षिणा* (यज्ञ का भुगतान) प्राप्त करता था। जो सबसे अधिक दान देता उसकी सबसे श्रेष्ठ योद्धा के रूप में प्रशंसा की जाती थी। जिन राजाओं ने आरंभिक ग्रंथों में यज्ञ के अनुष्ठानों को संपन्न किया था, उनका बाद के ग्रंथों में उदाहरण दिया गया। इस तरह अतीत में पलट कर देखने की झलक इससे मिलती है। *दान स्तुतियाँ, नरशंसियाँ* और *गाथाएँ*, जो वीरों की प्रशंसा में लिखी गई कविताएँ हैं, इस तरह के सैन्य अभियानों और प्रशंसा-गानों को अपने में समाहित किए हुए हैं।

2.3.1 *दान-स्तुति ऋचाएँ*

दान-स्तुति ऋचाएँ ऋग्वेद के कई भागों में बिखरी हुई हैं। *ऋग्वेद* के आठवें *मंडल* में इस तरह की सबसे अधिक ऋचाएँ हैं। ये कण्व ब्राह्मणों के परिवार से संबंधित हैं। कण्वों का संबंध बाद के ग्रंथों में *अंगिरसों* से किया गया है जो भृगुओं के साथ मिलकर अतीत की घटनाओं के बखान के संरक्षकों के रूप में जाने जाते हैं। *ऋग्वेद* के आनुष्ठानिक और धार्मिक मंत्रों के बीच प्रविष्ट कराई गई हम ऐसी राजकीय प्रशस्तियाँ पाते हैं जो इन मुखियाओं की भव्य उदारता को याद करती हैं। कालांतर में *गाथाएँ, नरशंसियाँ* और *आख्यान* भी नज़र आने लगे।

रोमिला थापर के अनुसार, दान देने के कृत्य के यशोगान को उस चीज़ के अभिलेखन के रूप में समझा जा सकता है जैसा घटित होने के विश्वास का किया जाता था। पुरोहित मुखिया के अतीत और वर्तमान की उपलब्धियों का उससे प्राप्त दान के साथ में बखान करता था। ये वीरतापूर्ण कृत्य प्रतिद्वंद्वी वंशों तथा मुखियाओं पर विजयों या *आर्य* और *दासों* के बीच संघर्षों के रूप में होते थे। पुरोहित द्वारा राजा की उदारता की प्रशंसा में रचित श्लोक राजा की प्रतिष्ठा को वैधता प्रदान करते थे। राजा के इन कृत्यों को याद रखने का उद्देश्य था कि जब किसी बाद की अवधि में इनको दोहराया जाएगा तो पुरोहित उतनी ही मात्रा में, यदि अधिक नहीं, दान प्राप्त करे। यह सामग्री आनुष्ठानिक ग्रंथों में क्यों अंतर्बद्ध की गई थी? थापर का विश्वास है कि इस तरह अंतर्बद्ध करना इस कृत्य को चिरस्मरणीय बनाता था। इनका साध्य था वर्तमान के लिए अतीत से अनुमोदन प्राप्त करना। राजाओं को पुराने राजाओं से जोड़ा जाता था और इस भाँति उनकी स्थिति को वैधता प्राप्त होती थी। क्रमिक रूप से *दक्षिणा* (यज्ञ हेतु पारितोषक) राजा तथा पुरोहित के बीच मौजूद घनिष्ठता को अभिव्यक्त करने लगी। पुरोहित को संपत्ति का दान दिया जा सकता था जिसमें गायें, घोड़े, ऊँट, रथ, बैलगाड़ी, वस्त्र, धन संग्रह, स्वर्ण, दासियाँ, इत्यादि शामिल होते थे। बाद में अतीत के राजाओं को उनकी इस महानता के लिए याद किया जाता रहा। उदाहरण के लिए, *राजसूय* यज्ञ से पहले पूर्व में अभिषिक्त राजाओं

की सूची का पाठ किया जाता था जिनमें से कुछ इन यज्ञों के यजमान रहे थे। बाद के *ब्राह्मण* ग्रंथों में भी पुराने राजाओं का नाम लिया जाता रहा, यद्यपि भाषा और अनुष्ठानों में बदलाव आ चुका था।

2.3.2 *गाथा* और *नरशंसी*

गाथा और *नरशंसी*, जो पहली बार *ऋग्वेद* में उदित हुए थे, साहित्य की प्रवाहपूर्ण सामग्री के रूप में बने रहे जो ऐतिहासिक प्रकृति की साहित्यिक विधा की ओर संकेत करते हैं। *गाथा* और *नरशंसी* दोनों को ही दैवीय ज्ञान के रूप में नहीं देखा जाता था और इन्हें मानवीय रचनाएँ माना जाता था। इन्हें धार्मिक गीतों से अलग समझा जाता था। वी. एस. पाठक के अनुसार, '*ऋग्वेद* में राजसी प्रशस्तियों, *गाथाओं* तथा *नरशंसियों* का संदर्भ स्वयं में ऐतिहासिक रचनाओं की मौखिक परम्परा के अस्तित्व का सुदृढ़ संकेत देता है जिसने कभी-कभी निश्चित और लिखित धार्मिक परम्परा को प्रभावित किया' (पाठक 1966)।

यह संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण अंतर्बद्ध इतिहास की प्रासंगिकता को स्थापित करने हेतु दिया गया है जो, रोमिला थापर के अनुसार, अक्सर वंश-आधारित समाजों में पाया जाता है। उनके अनुसार अंतर्बद्ध इतिहास भले ही समुचित रूप से इतिहास न हो किंतु यह एक प्रकार की अतीत के प्रति चेतना को प्रकट करता है जो ऐतिहासिक चेतना के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

2.3.3 *रैभी*

रैभियाँ (धार्मिक गीत), *गाथाएँ* और *नरशंसियाँ दान-स्तुति* मंत्रों के समान ही हैं। *गाथाओं* को *वेदों* में बाद में जोड़ा गया। मूल रूप से *गाथा* शब्द का सामान्य अर्थ गीत से था। बाद में इन्हें साहित्यिक रचनाओं की विधा में गिना जाने लगा। *गाथाओं* के रचयिता *ब्राह्मण* थे, विशेष रूप से कण्व *ब्राह्मण*। *दान-स्तुति* के मंत्रों का उद्देश्य वीरतापूर्ण कृत्यों का यशोगान था। अब इन *गाथाओं* में राजा की यज्ञ (जैसे अश्वमेध) के निष्पादन तथा पुरोहितों को दी गई उदारतापूर्ण *दक्षिणा*, बिना उसके वीरतापूर्ण कृत्यों को ध्यान में रखे, हेतु प्रशंसा की जाने लगी। यहाँ भी पूर्व-उदाहरणों पर बल दिया गया था। कुछ यज्ञ-अनुष्ठान कई दिनों तक साथ में चलते थे और इनके बखान के सस्वर पाठ में कवि को प्रदत्त उपहार का अंतर्निहित उल्लेख होता था। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि *गाथाओं* में संरक्षणदाताओं द्वारा उच्च प्रतिष्ठा प्राप्ति का गुणगान किया जाता था जो, उदाहरण के लिए, शूद्र भी रहा हो सकता था जिसके ब्राह्मणत्व को अब स्वीकृति मिल गई होती थी।

बाद के साहित्य में, विशेषकर इन अनुष्ठानों पर भाष्यों, *सूत्र* ग्रंथों में, इन वीरों को पितृ (पूर्वजों) का स्थान दिया गया। यह इसलिए किया गया क्योंकि वे अतीत से संबंध रखते थे। वैदिक युग के समय में ही नरशंसी के कई अर्थ निकलने लगे थे। इसका अर्थ था 'मनुष्यों की प्रशंसा' या सरल रूप में 'मनुष्यों द्वारा रचित प्रशस्तियाँ'। दस *नरशंसियों* (वीर-प्रशंसा के एक समूह) का पाठ अनुष्ठान के एक विशेष मौके पर किया जाता था। इनमें से अधिकांश वीरता के कृत्य पर उतना बल नहीं देती हैं जितना कि उच्च स्थान की प्राप्ति पर, जैसे एक *शूद्र* पुत्र द्वारा सफलतापूर्वक ब्राह्मणत्व का दावा या शुनःशेप का उच्चस्थ विश्वामित्र के कुल में शामिल किया जाना। इनमें से कुछ का उल्लेख *ऋग्वेद* में था किंतु अब इन्हें कथाओं का आधार प्रदान किया गया ताकि पूर्वोदाहरण दिए जा सकें और 'स्मृति को ताज़ा' किया जा सके। इन सुसाध्य माध्यमों से उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करने का महत्व बाद के ग्रंथों में उजागर होता है। *नरशंसियों* को विस्तृत यज्ञ अनुष्ठानों में शामिल कर लिया गया। इनका संबंध राजाओं, उनके वास स्थानों और *जन* के साथ उनके संबंधों, पुरोहितों तथा यज्ञ के स्थान के संदर्भों से था। उदाहरण के लिए, सतनिक सत्रजित ने *अश्वमेध* यज्ञ का निष्पादन किया तो चेदि के राजा से घोड़ा ले लिए जाने का उल्लेख आता है। इस प्रकार पहले किए गए यज्ञ के निष्पादन को याद किया गया है। उपर्युक्त सभी विधाएँ अतीत के व्यक्तित्वों और घटनाओं का संदर्भ देती हैं। इनके उल्लेख का कार्य इन्हें भविष्य के समय में याद रखे जाने के उद्देश्य से किया जाता था। *राजसूय* यज्ञ के दौरान उन महत्वपूर्ण ब्राह्मणों का उल्लेख किया जाता था जिन्होंने अतीत में महत्वपूर्ण राजाओं के लिए इन यज्ञों का निष्पादन किया था। इसी प्रकार, *अश्वमेध* यज्ञ से पहले उन सभी राजाओं का नामोच्चारण किया जाता था जिनका अभिषेक हुआ था और जिन्होंने *अश्वमेध* यज्ञ का निष्पादन किया था। इस प्रकार, 'इस तरह एक प्रयास किया गया था प्रथमतः इस तरह के नामों और उनकी कथाओं की

ऐतिहासिकता के दावे को कुछ आधार प्रदान करने का; दूसरा उन्हें अनुष्ठानों के भीतर प्रतिष्ठित कर उनको सहेजे रखे जाने को सुनिश्चित करने का; और तीसरा, कथाओं का अनुष्ठान के भाग के रूप में पाठ कर एक कल्पित अतीत को सुनियोजित रूप से वर्तमान से जोड़ने का' (थापर 2013: 126-27)। इस संदर्भ में अनुष्ठानों का प्रसार पुरोहितों की आजीविका, प्रतिष्ठा और प्राधिकार को सुनिश्चित करने के लिए किया जाता था और ऐतिहासिक परम्परा, भले ही यह कितनी ही बिखरी हुई थी, को काम में लाया जाता था।

2.3.4 *आख्यान*

आख्यान राजाओं और वीरों के अभिनंदन में रचे गए थे। ये यज्ञ-अनुष्ठानों के दौरान उच्चारित किए जाने वाली कथाएँ या बखान हैं। ये संभवतः ऋग्वैदिक काल में भी अस्तित्व में थे। यद्यपि ये *नरशंसियों* की तरह ही थे किंतु इनका संकेतार्थ भिन्न है। यह *अश्वमेध* और *राजसूय* यज्ञ के दौरान होने वाले अनुष्ठानों की विशेषता थी। इस समय तक दान का दक्षिणा में रूपांतरण हो चुका था। *आख्यान* का एक उदाहरण *देवासुरम्* है जो देवताओं और असुरों के बीच युद्ध का वर्णन करता है। इसका उल्लेख *ब्राह्मण* साहित्य में किया गया है। अन्य उदाहरण *अश्वमेध* यज्ञ के *परिप्लव* चक्र (दस दिनों के चक्र में एक वर्ष तक कथाओं को दोहराना) के दौरान *आख्यानों* का पाठ है। इसमें से अधिकांश का संबंध राजाओं की प्रशंसा से है। 'इनमें बीते युगों के उन राजाओं का उल्लेख किया जाता था जिन्होंने *अश्वमेध* यज्ञ किया था और इस प्रकार यह चक्र अतीत को याद करने का एक माध्यम बन गया'। *इतिहास* और *पुराण* के साथ इसके घनिष्ठ संबंध का साक्ष्य इस तथ्य में निहित है कि परिप्लव में आख्यानों के दस दिवसीय चक्र में आठवाँ दिन *इतिहास* के लिए और नौवाँ दिन *पुराण* के लिए निर्धारित था। साहित्यिक व्यक्तियों का एक विशेष वर्ग उदित हुआ जो *आख्यान* साहित्य में महारत रखता था। सामान्य रूप से *आख्यान* का तात्पर्य ऐतिहासिक बयान से है। कालांतर में *आख्यान इतिहास-पुराण* परम्परा में आत्मसात हो गए।

मौखिक परम्परा के विभिन्न भागों की विशेषता इसकी अंतःतत्व की नम्यता और इसमें निरंतर होने वाला दोहराव थी। *महाभारत*, जो *इतिहास* परम्परा से संबंध रखता है, में कई *गाथाएँ* शामिल हैं। कभी-कभी *गाथा* और *नरशंसी* को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया गया था और कई बार उन्हें *इतिहास* और *पुराणों* के बीच प्रविष्ट करा दिया गया था। *महाभारत* स्वयं में एक महान् *आख्यान* होने के साथ ही कई *आख्यानों* को समाहित किए हुए है। इसी तरह, ऋषि वाल्मीकि ने राम की महानता से संबंध रखने वाली *गाथाओं* और *आख्यानों* को संकलित कर रामायण की रचना की। पुराणों में *आख्यान* और पूरक-*आख्यान* (supplementary *Akhyanas*) महत्वपूर्ण घटक थे। उन्हें वंश के प्रारूप में मिश्रित और व्यवस्थित कर *वंशानुचरित* के रूप में उपयोग में लाया गया।

उत्तर-वैदिक काल के अंत तक *इतिहास-पुराण* की व्यापक परम्परा प्रबल हो चुकी थी। यह एक *सर्व-समावेशी* श्रेणी थी जिसमें कुछ खास ग्रंथ शामिल थे। शुरुआती तौर पर वीरता-पूर्ण कृत्य महत्वपूर्ण थे पर धीरे-धीरे यज्ञों पर ध्यान केंद्रित होता गया, हालांकि दान का महत्व बना रहा था। थापर का कथन है कि वंश-आधारित समाज अतीत के महत्व को तो पहचानते थे किंतु अतीत को इतिहास के रूप में व्यवस्थित करना महत्वपूर्ण नहीं समझते थे। महत्वपूर्ण यह था कि इस ऐतिहासिक परम्परा में वे भाग शामिल थे जो स्वयं इन प्रारंभिक समाजों द्वारा रचे गए साहित्य में अतीत के रूप में कल्पित किए गए थे। अनुष्ठान के माध्यम से या किसी धार्मिक संदर्भ में अंतर्बद्ध होने के माध्यम से अतीत को व्यवस्थित और स्मृति-बद्ध किया गया था। अतीत से केवल वही दर्ज किया गया और स्मृति में रखा गया जो उन लोगों की सत्ता की ओर संकेत करता था जो अपनी संपत्ति में वृद्धि करने के लिए धावे बोलते थे तथा बाद में यज्ञ के यजमान के रूप में स्थापित हुए। इन वृत्तांतों में भिन्नता है किंतु सभी मामलों में इनके गुणों का निर्धारण ब्राह्मणों ने किया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच पृथकता ने ब्राह्मणों के लिए क्षत्रियों के कृत्यों को बढ़ावा देना संभव बनाया, विशेषकर एक ही वंश में पुराने समय से नए समय में सत्ता के अस्तित्व की निरंतरता की ओर संकेत करने वाले दावों को।

बोध प्रश्न-1

1) चर्चा कीजिए कि किस प्रकार *दान-स्तुति* ऋचाएँ, *नरशंसी* और *आख्यान* ऐतिहासिक चेतना को प्रकट करते थे?

....

....

....

2) *इतिहास-पुराण* परम्परा क्या है?

....

....

....

2.4 महाकाव्य

महाकाव्य प्रारंभिक रूप से मौखिक रचनाएँ थीं जिन्होंने बाद के समय में एक कथा-वृत्तांत के माध्यम से सम्मिश्रित और संयोजित रूप ले लिया। यही कारण है कि उनकी तिथि का निर्धारण करना समस्यापूर्ण है। वह उस समय से पूर्व की घटनाओं का वर्णन करती हैं जब उनकी रचना की गई थी। इनमें अंतर्बद्ध इतिहास के तत्व भी शामिल हैं। पुनः इस पर बल देना महत्वपूर्ण होगा कि ये इतिहास के मान्य अर्थ के अनुसार इतिहास नहीं हैं किंतु इनमें उसके बारे में वृत्तांत शामिल हैं जिनके विषय में यह माना जाता था कि ऐसा घटित हुआ था। भारत में दो मुख्य महाकाव्य *महाभारत* और *रामायण* हैं। दोनों में ही कई क्षेपक शामिल हैं, अतः इन्हें किसी एक ही लेखक की कृति नहीं माना जा सकता है। *महाभारत* में आख्यानात्मक खंड एक वंश-आधारित समाज की पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हैं किंतु बाद में जोड़े गए उपदेशात्मक क्षेपक राज्य-व्यवस्था को प्रतिबिंबित करते हैं। महाकाव्यों में शामिल कविताओं के मूल को *ऋग्वेद* की *दान-स्तुति* ऋचाओं तथा वैदिक साहित्य की *गाथाओं, नरशंसियों* और *आख्यानों* तक ढूंढा जा सकता है। इसमें पुराने समयों के ऐसे वृत्तांत हैं जिनका परिवर्तन की ओर संकेत करते हुए फिर से बखान किया गया था। इनके केंद्र में राजा और राजपुरुष हैं, दोनों ही महाकाव्य कथाओं या कहानियों के वाचन से विकसित हुए हैं। *रामायण* के पुराने स्वरूप को राम-कथा तथा *महाभारत* को *भारत* कहा जाता था। दोनों ही स्थान-विशेष से जुड़े हैं तथा दो मुख्य वंशों के आस-पास घूमते हैं। इस प्रकार, *महाभारत* के केंद्र में पश्चिमी गंगा घाटी तथा ऐला वंश है। *रामायण* के केंद्र में मध्य गंगा घाटी तथा इक्ष्वाकु वंश है। *महाभारत* परिवर्तन के तीन चरणों से गुज़रा था – 'मूल रचना का साहित्यिक पाठ व्यास ने रचा था जिसमें बाद के संपादकों, संभवतः भृगुओं, ने क्षेपकों को जोड़ा। अंतिम चरण राजत्व तथा विष्णु की उपासना का प्रचार करता है' (थापर 2013: 147)।

महाभारत में 18 *पर्व* (अध्याय) शामिल हैं। इनमें से कुछ *पर्व* जहाँ महाकाव्य का केंद्रीय भाग बनाते हैं वहीं कई अन्य क्षेपक हैं। यह महाकाव्य कौरवों और पांडवों के बीच क्षेत्र-विशेष पर नियंत्रण तथा राजनीतिक प्रभुता हेतु संघर्ष का वर्णन करता है। दोनों ही पुरु के वंशज हैं। पांडवों के साथ संबंध रखने वाला विशेष चरित्र वृष्णि कुल के कृष्ण का है। मूल रूप से मौखिक तथा सूत/चारण परम्परा का हिस्सा रहे *महाभारत* का जन्मेजय द्वारा मैमीस वन में किए जा रहे *सर्प-यज्ञ* में पाठ किया गया था। इसका केंद्रीय भाग नायकों की वंश-क्रम व्यवस्था वाले एक पशुचारक-कृषि समाज (*सभापर्व*) से एक सुस्पष्ट कृषि-समाज तथा गंगा घाटी में स्थापित राजतंत्रीय राज-व्यवस्था (*शांतिपर्व*) की ओर संक्रमण को दर्शाता है। राजतंत्रीय राज्यों की ओर क्रमिक संक्रमण के साथ वंश-आधारित समाज का सामाजिक चरित्र भी बदल गया था। नायकों की मृत्यु के साथ वंश-आधारित व्यवस्था का भी अंत हो गया था।

महाकाव्यों में राजव्यवस्थाएँ पीछे की ओर मुखियाओं के युग पर नज़र डालती हैं। इसका उद्देश्य 'कल्पित वंशावलियों के संबंध' के माध्यम से राजव्यवस्था को वैधता तथा मान्यता प्रदान करना है। यह अतीत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह बड़े और छोटे पुत्रों के उत्तराधिकार से संबंधित विषयों तथा अयोग्यता के प्रश्नों को वैधता और मान्यता प्रदान करता है। *महाभारत* में युधिष्ठिर और दुर्योधन के बीच उत्तराधिकार का विवाद और *रामायण* में राम और भरत के बीच जेष्ठाधिकार से संबंधित समस्या इसे ही प्रकट करती है। व्यास का प्रयास यह था कि घटनाओं को इस प्रकार से छाँटा जाए और

नया रूप दिया जाए कि वह ब्राह्मणीय आचार-शास्त्र को महत्व प्रदान करें। साथ ही इससे यह तथ्य भी रेखांकित होता है कि *महाभारत* यद्यपि मूल रूप से सूतों/चारणों द्वारा रचा गया था किंतु बाद में इसे ब्राह्मणों द्वारा आत्मसात किया गया जिन्होंने इसे लिखित स्वरूप प्रदान किया। बाद के क्षेपक वे हैं जो राम को दैवीय स्वरूप प्रदान करने, राजा के कर्तव्य तथा आचरण-संबंधी अंश, सृष्टि-संबंधी विमर्श तथा सदाचार, इत्यादि का वर्णन करते हैं। ऐसा नव उदित राजतंत्रों तथा नव धार्मिक पंथों की आवश्यकता से तालमेल बैठाने के लिए किया गया था।

इनमें हुए कुछ महत्वपूर्ण विकासक्रम *ऋग्वेद* के पुराने समय के संघर्षों (*दशराजन्* या दस राजाओं का युद्ध) की कहानी को चिह्नित करते हैं जिसे अत्यधिक विस्तार दे दिया गया था। एक स्थानीय संघर्ष को एक महायुद्ध के रूप में विस्तार दिया गया था। लोगों के आप्रवासन के साथ-साथ जैसे-जैसे कहानियों ने आकार लिया मैत्रियाँ तथा पहचानें भी बदल गई होंगी। केंद्रीय वृत्तांत में कई कहानियाँ जोड़ दी गईं या कुछ को हटा दिया गया होगा। ये ग्रंथ तभी एक स्थिर और ठोस रूप ले पाए जब इन्हें लिख लिया गया और तब भी इनमें कुछ जोड़ा जा सकता था। केवल उसे ही बनाए रखा गया जिसे इन ग्रंथों को अद्यतन करने वालों द्वारा उचित समझा गया था। इस प्रकार इनमें ऐतिहासिक चेतना के तत्व को शामिल किया गया। 'बिना यह ध्यान रखे कि जिसका वर्णन किया जा रहा है वह तथ्यपरक है या नहीं इनमें अतीत का बोध है और अतीत-संबंधी ज्ञान की परम्परा का निर्वाह जो बाद में अतीत की पुनर्रचना हेतु महत्वपूर्ण होता है' (थापर 2013: 149)। अब हम दोनों महाकाव्यों *महाभारत* और *रामायण* का कुछ अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

2.4.1 *महाभारत*

इस महाकाव्य में उन समाजों का वर्णन है जिनका उल्लेख *ऋग्वेद* में किया गया था और साथ ही *वेदों* में अज्ञात तथा उसके बाद के काल के वंशों और रीतियों का भी इसमें समावेश किया गया है। इसमें दो मुख्य वंशों में से एक *चंद्रवंश* को देखा जा सकता है जिन्हें मनु की संतान इड़ा का वंशज माना जाता है। *महाभारत चंद्रवंश* के कुल के चारों ओर घूमता है तो *रामायण सूर्यवंश* के कुल के। इसकी केंद्रीय कथा कौरवों तथा पांडवों के मध्य युद्ध से निर्मित है जो पुरु के वंशज थे। वैदिक साहित्य में वंशों तथा व्यक्तियों के संबंध में बिखरे हुए संदर्भ हैं। कुछ वंश जो *चंद्रवंश* की मुख्य शाखा के लिए दूरस्थ थे उन्हें भी मुख्य वंश शाखाओं के साथ शामिल कर लिया गया जब युद्ध घटित हुआ। यह संभव है कि दूरस्थ शाखाएँ और उनकी कहानियाँ पृथक सूत/चारण परम्परा का हिस्सा रही हों।

पुरु ययाति के पाँच पुत्रों में सबसे छोटे थे। जेष्ठाधिकार के सिद्धांत के हिसाब से राज्य का अधिकार यदु को मिलना चाहिए था तथापि उनका उत्तराधिकार छीनकर पुरु को राजा बनाया गया। इससे यह संकेत मिलता है कि इस समय भी जेष्ठाधिकार का नियम ठोस रूप नहीं ले सका था। ज्येष्ठाधिकार के नियमों का एक बार फिर पालन नहीं होता जब अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु का पुत्र कुरु राज्य का उत्तराधिकारी बनता है। इस कथा में कई जिज्ञासापरक पहलू हैं जिनकी व्याख्या करना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए, जेष्ठाधिकार के नियम से विचलन, कैसे धृतराष्ट्र और पांडु मुख्य वंश-क्रम से संबंधित न होते हुए भी सिंहासन के प्रतिस्पर्धी दावेदार बन गए, इत्यादि। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि वंश आधारित समाजों में जहाँ नातेदारी के बंधन महत्वपूर्ण होते हैं इस तरह के विकासक्रम घटित हो सकते हैं।

महाभारत में ऐसे कई हिस्से हैं जो वंश-आधारित व्यवस्था का संकेत करते हैं। पांडवों को द्यूत क्रीड़ा में भाग लेने की चुनौती दिया जाना और महाकाव्य के कथानक में वरिष्ठ नातेदारों की भूमिका को महत्वपूर्ण समझा गया था जो उस सभा के महत्व की ओर इशारा करता है जहाँ वरिष्ठ नातेदार एकत्र होते हैं और निर्णय लेते हैं। महाकाव्य के उपदेशात्मक हिस्सों (*शांतिपर्व*) में सुपरिभाषित राजतंत्रीय प्रणाली का प्रचलन दिखाई देता है। राजा को ऐसे अधिकार प्रदान किए गए हैं जो उसे अपने अन्य नातेदारों से ऊपर रखते हैं। उसके पास बल प्रयोग तथा कर लगाने का अधिकार है। अब नातेदारों का अधिक संदर्भ नहीं दिया गया है किंतु *राजा* और उसकी *प्रजा* के बीच का विभाजन अधिक सुस्पष्ट नज़र आता है। *जातियों* का प्रचलन इसमें एक निश्चित भूमिका निभाता है। पुराने समय का क्षत्रिय महत्वपूर्ण बना रहता है किंतु अब उसके कर्तव्यों में परिवर्तन आ गया होता है। पुराने समय में वह अपने वंश के सम्मान की रक्षा कर रहा था और उसके वीरतापूर्ण कृत्यों को ध्यान

में रखा गया था। अब उसके कर्तव्यों में बाद के ग्रंथों में सूचीबद्ध कार्य शामिल हैं, जैसे दान करना, यज्ञ के आयोजन को व्यवस्थित करना तथा वेदों का अध्ययन करना। यह सूची काफ़ी लंबी है और यह कहना पर्याप्त होगा कि इस महाकाव्य का कथानक दो प्रकार के समाजों के बीच संक्रमण को प्रदर्शित करता है। 'एक नया युग जो एक समाप्त हो गए युग पर दृष्टि डालता है। मुखियाओं की वीरतापूर्ण दुनिया मन्द पड़ चुकी थी तथा राजवंशों ने उच्च स्थान ग्रहण कर लिया था। किंतु ये राजवंश अब भी पुरानी दुनिया के वीरों से वैधता की आकांक्षा रखते थे और इन नायकों के सहयोगियों के रूप में नए देवता शामिल किए गए थे। अतः महाकाव्यों की निरंतरता की आवश्यकता बाद के समय में बनी रही' (थापर 1979: 627)।

2.4.2 *रामायण*

महाभारत की तरह *रामायण* भी मौखिक परम्परा का हिस्सा रही थी। इसको लिखित स्वरूप बाद के समय में प्रदान किया गया था। इसके कई संस्करण हैं। वाल्मीकि, जिन्होंने *रामायण* को लिखा था, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने प्राचीन राम-कथा का प्रयोग किया था जो स्वयं कई बिखरी हुई कहानियों का संग्रह था। इस तरह की कथाओं से एक एकल कृति का सृजन हुआ। *महाभारत* की तरह ही *रामायण* में भी कई क्षेपक जोड़े गए हैं और इसलिए इसको तिथिबद्ध करना मुश्किल है। *रामायण* ऐसी गाथा है जो दो प्रकार के समाजों के बीच संघर्ष को प्रकट करती है: कोसल के राज्य और राक्षसों की दुनिया के बीच। इस महाकाव्य के नायक राम राजा दशरथ के सबसे जेष्ठ पुत्र हैं जो अयोध्या के शासक हैं। निकट के वन तपस्वियों के निवास स्थान हैं जिन्हें राक्षसों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। राम और उनके अनुज लक्ष्मण राक्षसों से वनों को मुक्त करने में ऋषियों की मदद करते हैं। बाद में वे पड़ोस के राज्य मिथिला की ओर बढ़ते हैं जहाँ राजा जनक अपनी पुत्री के लिए *स्वयंवर* का आयोजन कर रहे हैं और एकमात्र राम ही हैं जो इस शर्त को पूरा कर सकते हैं कि जो भी शिव के विशाल धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाएगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा। राम सीता को लेकर अयोध्या लौटते हैं जहाँ भविष्य के राजा के रूप में उनके राज्याभिषेक की घोषणा की जाती है। लेकिन, राम की विमाता कैकेयी अपनी दासी मंथरा के बहकावे पर इससे रूठ जाती हैं और दशरथ को उसे वे तीन वरदान प्रदान करने हेतु दबाव डालती हैं जिसका उन्होंने कैकेयी से पहले वादा किया था। वह यह माँग करती हैं कि राम की जगह उनके पुत्र भरत को राजा बनाया जाना चाहिए तथा राम को 14 वर्षों के लिए वनवास में भेज दिया जाना चाहिए। वचन से बंधे होने के कारण दशरथ को इसे स्वीकारना पड़ता है। राम, सीता और लक्ष्मण के साथ वन में जाना स्वीकारते हैं। कुछ समय बाद ही शक्तिशाली '*राक्षस*' रावण द्वारा सीता का अपहरण कर लिया जाता है। इस तरह कष्ट में घिरे हुए राम की सहायता एक वानर मित्र हनुमान द्वारा की जाती है। राम और रावण के बीच एक युद्ध होता है जिसमें रावण मारा जाता है। राम, सीता और लक्ष्मण अपना वनवास पूरा करने के पश्चात् अयोध्या लौटते हैं जहाँ राम को राजा के रूप में राजमुकुट पहनाया जाता है।

विष्णु के अवतार के रूप में राम की भूमिका, सीता का वन-गमन, तत्पश्चात् वाल्मीकि के आश्रम में निवास, उनके पुत्रों लव और कुश का जन्म, राम के द्वारा किए जा रहे *अश्वमेध* यज्ञ के दौरान उनके पुत्रों द्वारा *रामायण* का सस्वर पाठ, सीता का वापस लौटना और पुनः अग्नि परीक्षा से गुज़रने हेतु उन पर दबाव और अपनी निर्दोषता को सिद्ध करते हुए सीता का धरती माँ की गोद में समा जाने के निर्णय से संबंध रखने वाले अध्यायों को *रामायण* में बाद के समय में जोड़ा गया था।

'*राक्षस* ' एक भिन्न संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं जो राज्यों की कृषि-आधारित तथा स्थायी रूप से बसे समाजों के साथ द्वंद्व में है। वन न केवल '*राक्षसों*' के निवास स्थान हैं बल्कि एक भिन्न प्रकार की सत्ता – नैतिक सत्ता – को प्रतिबिंबित करने वाले ऋषियों के निवास स्थान भी हैं। इस ग्रंथ का भौगोलिक क्षितिज मध्य गंगा के मैदानों से मध्य भारत तक फैला हुआ है। इस महाकाव्य का उद्देश्य प्राचीन समाजों को याद करना है जो किसी न किसी रूप में वर्तमान में भी प्रचलित हैं और महाकाव्य नए स्वरूप में हुए इसके परिवर्तन को दर्ज करता है। यह समाज व्यापक परिवर्तनों से गुजर रहा है। नए राज्यों का उदय हो रहा था या एक नए राज्य को वैधता की आवश्यकता थी जिसके लिए राजा को दैवीय रूप में चित्रित किया जाना आवश्यक था। अतीत से मान्यता प्राप्त करना इस प्रकार आवश्यक बन गया था।

जहाँ तक *रामायण* की ऐतिहासिकता का प्रश्न है यहाँ हम इसके जैन संस्करण विमलसूरि के *पौमचरियम* की चर्चा करेंगे। यह संस्करण वाल्मीकि *रामायण* और बौद्ध *दशरथजातक* के साथ सामान्य युग की शुरुआत में स्थापित हो चुका था। *पौमचरियम* प्राकृत में है तथा इसकी तिथि सामान्य युग की शुरुआती शताब्दी है। इस जैन ग्रंथ के अनुसार *रामायण* के अन्य दो संस्करण ऐतिहासिकता का अभाव रखते हैं। रोमिला थापर के अनुसार यह वक्तव्य एक प्रकार से ऐतिहासिक परम्परा का स्वीकरण है। उनका कहना है कि प्रत्येक संस्करण एक वक्तव्य प्रकट करता है, वक्तव्य जो अपनी प्रकृति में ऐतिहासिक हैं क्योंकि 'वे समय के किसी बिंदु पर समाज के एक विशेष हिस्से की सामाजिक मान्यताओं को अभिव्यक्त करते हैं' (थापर 2013: 212)। इस ग्रंथ में बिंबिसार का उल्लेख है जो राजगृह में शासन कर रहा है। बिंबिसार महावीर का निकटस्थ समकालीन है, इस प्रकार इसके चरित्रों की ऐतिहासिकता की ओर संकेत करता है। *पौमचरियम* इस गाथा के पुनर्लेखन का प्रयास करता है,*'राक्षसों'* को बुरे के रूप में वर्णित ना करते हुए तथा अपनी गाथा की ऐतिहासिक प्रमाणिकता का दावा करते हुए। इसके केंद्र में विंध्य क्षेत्र है तथा सभी चरित्र समर्पित जैन अनुयायी हैं। *विद्याधरों* के दो समूहों – 'राक्षसों' तथा 'वानरों' – की वंशावली इस ग्रंथ के प्रारंभिक हिस्से का निर्माण करती है। जिन चार वंश समूहों का उल्लेख किया गया है उनमें विद्याधर सबसे महत्वपूर्ण हैं। वे विद्या धारण करने वाले हैं अतः उन्हें *विद्याधर* कहा गया है। मेघवाहन नामक एक व्यक्ति है जो *विद्याधरों* में से एक है। वह कुछ परिस्थितियों के कारण लंका की ओर प्रस्थान कर जाता है। वहाँ वह *'राक्षसवंश'* की स्थापना करता है। अन्य *विद्याधर* राजकुमार का निर्वासन वानरद्वीप में है तथा वहाँ किष्किंधा में वह राज्य की स्थापना करता है। *'वानरवंश'* और *'राक्षसवंश'* आपस में संबंधित हैं। वाल्मीकि *रामायण* से एक दिलचस्प भिन्नता यह है कि जो *'वानरवंश'* से संबंधित हैं वे 'वानर' नहीं हैं बल्कि 'वानर' वाला अलंकरण उनका मानक प्रतीक है। यह संघर्ष समान शक्तियों के बीच है। जहाँ तक गाथा का संबंध है जो दो वंश महत्वपूर्ण हैं उनमें से एक *हरिवंश* है जिससे जनक, जो सीता के पिता हैं, का संबंध है तथा दूसरा *आदित्यवंश* है जिसे इक्ष्वाकु भी कहा गया है तथा इसके कुछ नाम *रामायण* के समान ही हैं। इक्ष्वाकु राजाओं में से शुरुआती राजा सागर ने किसी *विद्याधर* राजकुमारी से विवाह किया था। रावण लगभग एक सार्वभौम विजेता तथा शासक है। वह जैन अनुयायी है और जैन मठों का संरक्षक है। दशरथ संन्यास ले लेते हैं और कैकेयी अपने पुत्र को राजा बनाना चाहती है। किंतु वह राम को वन जाने से मना करती है क्योंकि उसका उद्देश्य केवल अपने पुत्र को राजसिंहासन दिलवाना था। वनवास का क्षेत्र विंध्य में है जहाँ ऋषि आश्रमों की जगह जैन मठ हैं। राम और रावण के बीच का संघर्ष वाल्मीकि की *रामायण* जितना भीषण नहीं है क्योंकि दोनों एक पूर्वनिर्धारित संबंध रखते हैं। अंततः, दशरथ और राम दुनिया से संन्यास ले लेते हैं, सीता भिक्षुणी बन जाती हैं और जैन आचारों की विजय होती है। कुछ विशेष गुणों के कारण जैन *रामायण* अन्य संस्करणों के मुकाबले अधिक प्रामाणिकता का दावा कर सकती है। ऐतिहासिक राजा बिम्बिसार के साथ संबंध, अन्य संस्करणों को मनगढ़ंत कहकर उनकी भर्त्सना करना ऐतिहासिकता के तत्व की ओर संकेत करता है। रोमिला थापर कहती हैं, 'एकमात्र जैन संस्करण ही वह प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जिसे वह प्रमाणिक ऐतिहासिक विवरण घोषित करता है; अतः जिन पहलूओं के समर्थन का संकेत इसमें मिलता है वे अतीत-संबंधी अवधारणा के नज़रिए से महत्वपूर्ण हैं। इस गाथा के लिए ऐतिहासिकता का दावा अतीत के संबंध में एक नए चिंतन का संकेत करता है' (थापर 2013: 262)।

2.5 *पुराण*

सामान्य युग (Common Era) की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य में *इतिहास-पुराण* की परम्परा का *पुराणों* के रूप में संकलन हुआ। इसने इतिहास को इस सीमा तक दर्ज किया है कि यह अंतर्बद्ध इतिहास से मूर्त इतिहास की ओर संक्रमण को निरूपित करता है। इसका संबंध चारण परम्परा से है जहाँ *सूत* तथा *मागध* इसके प्रारंभिक रचयिताओं में थे। बाद में इस परम्परा को ब्राह्मणों द्वारा अपना लिया गया जिन्होंने अतीत-संबंधी मौखिक जानकारी का उपयोग किया और अपने समय में मौजूद परिस्थितियों के संदर्भ में इसे लिखित रूप में दर्ज किया। प्रत्येक *पुराण* किसी देवता विशेष पर केंद्रित थी और वर्तमान और अतीत की एकीकृत विश्वदृष्टि उपलब्ध कराने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करती थी। इसका *वंशानुचारित* वाला खंड सामान्य युग की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक सभी ज्ञात वंशों और राजवंशों की वंशावलियों का अभिलेखन करता है। यह *इतिहास* परम्परा के अभिकेंद्र में स्थित है। इसने पुराने समय के कई अंतर्बद्ध स्वरूप के इतिहासों तथा *कथाओं* और *आख्यानों* को स्वयं में समाहित

कर लिया। वंशावली-संबंधी खंडों ने न केवल अतीत को दर्ज करने का दावा किया बल्कि भविष्य में वंशीय शक्ति के दावों के लिए सारभूत तत्व बन गया। वे राजवंश जिनका सामान्य युग की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक *पुराणों* में उल्लेख है वे स्वीकृत क्षत्रिय वंशों के वंशज थे। कालांतर में ब्राह्मण और *व्रत-द्विज*, शूद्र तथा '*म्लेच्छ*' भी शासक वंशों में शामिल कर लिए गए।

गुप्तोत्तर काल में नए शासक परिवार वंशीय संबंधों पर निर्भर थे, उनके क्षत्रिय होने के दावों को पुष्ट करने वाली मनगढ़ंत वंशावलियों पर। विकसित हो रही कृषि अर्थव्यवस्था और विस्तारित होती राज्य व्यवस्था में हितधारक, जैसे भूस्वामी, दानदाता, कुल के मुखिया, शासक परिवार, सभी उच्च स्थान का दावा कर रहे थे क्योंकि उनको काफ़ी कुछ गंवाना पड़ता अगर किसान खेत को जोतने से इंकार कर देते। निम्न तबकों पर किसी भी भाँति उन लोगों की सेवा हेतु दबाव डालना था जिनकी राजनीतिक शक्ति का उत्थान हुआ था। *इतिहास-पुराण* परम्परा सामाजिक अवस्थिति को वैधता प्रदान करने के माध्यमों में से एक थी और इस हेतु *वंशानुचरित* वाले खंडों को सावधानीपूर्वक सहेजा जाना था। गुप्तोत्तर काल में नए शासक परिवार *सूर्यवंश* और *चंद्रवंश* के कुलों के साथ स्वयं का संबंध दिखाना चाहते थे जो उनकी प्रभावी उच्च अवस्थिति की आवश्यकता को रेखांकित करता है। संबंधों की यह इच्छा और इनको गढ़ पाने के सफल प्रयास, *वेदों* तथा महाकाव्यों में मौजूद सामग्री के *वंशावलियों* के रूप में सूत्रीकरण की ओर संकेत करते हैं। जो राजनीतिक सत्ता का दावा कर रहे थे उनका इतिहास इस *वंशावली* परम्परा में अंतर्बद्ध था। गुप्तोत्तर काल में केवल अनुष्ठान ही नहीं थे जिनका नए उदित होते राज्यों की वैधता सिद्ध करने के लिए उपयोग किया गया बल्कि शासक का इतिहास उपलब्ध कराना राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक विशेषता थी। इस प्रकार *वंशावली* एक उपयोगी ऐतिहासिक तथा राजनीतिक माध्यम के रूप में कार्य कर रही थी। जिन्होंने स्वयं को ऐतिहासिक परम्परा के वाहकों के रूप में स्थापित किया था वे राजनीतिक सत्ता से अपनी निकटता के प्रति सचेत थे। ब्राह्मण इस परम्परा के माध्यम से नए राजवंशों को वैधता प्रदान कर रहे थे। सामान्य युग की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य का काल विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं, शासकों और धार्मिक पंथों के बीच प्रतिस्पर्धा और संघर्ष का काल था।

बौद्ध धर्म और शैव व *भागवत्* संप्रदायों के बीच प्रतिस्पर्धा थी। जो *भागवत्* परम्परा का समर्थन करते थे, जैसे गुप्त, उन्हें उपयुक्त संरक्षणदाता माना जाता था। इस संदर्भ में एक अतीत गढ़ा गया जिसमें ऐतिहासिकता के दावों ने *वंशावलियों* का रूप ग्रहण किया। इस तथ्य का समर्थन कि इस काल में वंशावलियाँ महत्वपूर्ण थीं इनकी बढ़ती हुई आवृत्ति से होता है। इन *वंशावलियों* में एक तरह की ऐतिहासिक चेतना आबद्ध थी जो इस समय केवल बाहरी ढाँचे की तरह थी। इसने उत्तरोत्तर कालों में अभिलेखों, *चरितों* और *वंशावलियों* के रूप में ठोस स्वरूप ग्रहण किया।

बोध प्रश्न-2

1) *महाभारत* के संदर्भ में चर्चा कीजिए कि कैसे अतीत में पीछे झांकना और अतीत के समाजों को याद करना ऐतिहासिक चेतना को प्रकट करता है?

....

....

....

2) *पौमचरियम* तथा इसकी ऐतिहासिकता की चर्चा कीजिए।

....

....

....

3) ऐतिहासिक परम्परा के निर्माण में वंशावलियों की भूमिका की चर्चा कीजिए।

....

....

....

2.6 सारांश

जैसा कि विद्वानों ने प्रदर्शित किया है, किसी समाज को ऐतिहासिक या अनैतिहासिक के रूप में श्रेणीबद्ध करना महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि समाज किस तरह अतीत को देखते हैं। इस इकाई में आपने यह जाना कि लगभग 1500-1000 बी सी ई तथा पुनः लगभग 1000 बी सी ई से 1300 सी ई के काल-खंडों के विभिन्न समयों में भारतीय समाज ने किस तरह से ऐतिहासिक चेतना को प्रदर्शित किया। इस चर्चा से यह स्पष्ट हो चुका है कि आज के समय में जिसे इतिहास के रूप में समझा जाता है उसका क्षेत्र सीमित है। यूरोप के बाहर के पूर्व-आधुनिक समाजों ने अतीत को विभिन्न तरीकों से समझने का प्रयास किया, विशेषकर रोमिला थापर जिसे 'स्वयं के अतीत को देखता हुआ अतीत' कहती हैं। हमने इतिहास के अंतर्बद्ध स्वरूपों के प्रारम्भ, और किस तरह यह एक अधिक मूर्त स्वरूप की ओर अग्रसर हुआ, को चिह्नित किया है जिसकी शुरुआत *पुराणों* से हुई और अंत *चरितों, वंशावलियों* और अभिलेखों में हुआ। अगली कुछ इकाइयों में हम यह देखेंगे कि कैसे आनुष्ठानिक ग्रंथों में इतिवृत्तों को स्थापित करने की आवश्यकता कम हो गई और कुछ नई विधाएँ अस्तित्व में आईं जो विशेष रूप से अतीत के बखान से संबंध रखती थीं। अगली इकाई में हम *श्रमण* परम्परा का अध्ययन करेंगे जो *इतिहास-पुराण* परम्परा का विकल्प थी।

2.7 शब्दावली

वेद	भारतीय उपमहाद्वीप का प्राचीनतम साहित्य। *वेद* चार हैं: *ऋग, साम, यजुर* तथा *अथर्ववेद*। *ऋग्वेद* की रचना लगभग 1500-1000 बी सी ई के काल में मानी जाती है और बाकी के तीन *वेद* लगभग 1000-800 बी सी ई में रचे गए माने जाते हैं
ब्राह्मण	यह गद्य-ग्रंथों का विपुल साहित्य है जिसमें धार्मिक विषय, विशेषकर यज्ञों के निष्पादन तथा अलग-अलग यज्ञों के अनुष्ठानों और आयोजनों के व्यावहारिक और रहस्यात्मक महत्व से संबंध रखते हैं
आरण्यक और *उपनिषद*	इनमें वनवासी ऋषियों और तपस्वियों द्वारा ईश्वर, दुनिया तथा मानवता के संबंध में रचे गए मंत्र हैं और इनमें प्राचीनतम भारतीय दर्शन का श्रेष्ठ भाग संकलित है
प्रशस्ति	किसी वस्तु या व्यक्ति को महत्व देते हुए एक प्रकार की श्रद्धा प्रकट करते हुए उसकी प्रशंसा में किया गया वाचन या लेखन
वंशानुक्रम	एक ही पूर्वज के सीधे वंशक्रम में

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 2.3 तथा इसके उप-भाग

2) देखें भाग 2.2 तथा इसके बाद के भाग

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 2.4.1

2) देखें उप-भाग 2.4.2

3) देखें भाग 2.5

2.9 संदर्भ ग्रंथ

पाठक, वी. एस., (1966) *एंशियेंट हिस्टॉरियंज़ ऑफ़ इंडियाः अ स्टडी इन हिस्टौरिकल बायोग्रफ़ीज* (*बाम्बेः* एशिया पब्लिशिंग हाउस).

थापर, रोमिला, (1979) 'द हिस्टॉरीयन एंड द एपिक', थापर, आर., (संपा.) (2000) *कल्चरल पास्ट्सः एसेज़ इन अर्ली इण्डियन हिस्ट्री* (दिल्लीः आक्स्फ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 613-629.

थापर, रोमिला, (1986) 'सोसायटी एंड हिस्टॉरिकल कॉन्सियशनेसः द इतिहास-पुराण ट्रेडिशन', एस. भट्टाचार्य और रोमिला थापर (संपा.), *सिचूएटिंग इंडियन हिस्ट्री* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 353-83.

थापर, रोमिला, (1995) 'हिस्टॉरिकल कॉन्सियशनेस इन अर्ली इण्डिया', थापर, आर., (संपा.) (2000) *कल्चरल पास्ट्सः एसेज़ इन अर्ली इण्डियन हिस्ट्री* (दिल्लीः ऑक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पृ. 155-172.

थापर, रोमिला, (2013) *द पास्ट बीफ़ोर असः हिस्टॉरिकल ट्रेडिशंस ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया* नई दिल्लीः परमानेंट ब्लैक).

2.10 शैक्षणिक वीडियो

द कॉर्पस ऑफ़ इतिहास पुराण
https://www.youtube.com/watch?v=I7ASYbmdiEc

विन्येट्स ऑफ़ रामायण – पर्सपैक्टिव्स ऑफ़ ए हिस्टौरियन
https://www.youtube.com/watch?v=fsDsxO4krB4

कन्वर्सेशन्स विद इंडियाज़ एंशियेंट पास्ट
https://www.youtube.com/watch?v=Wsu1Jc3y_sM

द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टॉरिकल ट्रडिशंस ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया
https://www.youtube.com/watch?v=V3rR_x24S64

द पुराणाज़। जयपुर लिटरेचर फैस्टिवल
https://www.youtube.com/watch?v=rnlgJQSkfQc

किताबः देवतदत्त पट्टनायक ऑन महाभारत
https://www.youtube.com/watch?v=RmMHpGfU6Ww